करबला की बलिबेदी

कबरला कान्ड धर्म एंव अधर्म के मध्य एक युद्ध

डॉ0 वहीद मिर्ज़ा हनफ़ी, लखनऊ युनिवर्सिटी

झूठ और सच का युद्ध, न्याय और अन्याय की टक्कर उसी समय शुरु हो गई थी जब यह संसार बना और मनुष्य का जन्म हुआ। इतिहास के पन्नो में ऐसी सैंकड़ो मिसालें आसानी से मिल सकती हैं कि इस संसार में चप्पा चप्पा उन शहीदों के खून से रंगीन हो गया जो सच्चाई के लिए अपनी जान पर खेल गए। वे तलवारों की धारों और नेज़ो से घायल हुए और आग की लपटों में जल कर राख हो गए मगर उन्होने अत्याचार और अन्याय के आगे सिर नहीं झुकाया। इन्हीं शहीदों के कारण आज भी दुनिया इस क़ाबिल है कि इस में इन्सान जिन्दा रह कर आजादी की सांस ले सके। इन्हीं की क़ीमती क़ुर्बानियों का यह नतीजा है कि सच्चाई और इन्साफ का नाम दुनिया से मिटा नहीं! परन्तु जो घटना तेरह सौ साल पूर्व करबला के मैदान में हुई वह कई तरह से अनोखी है यही कारण है कि इसकी याद इस्लाम के बेटों के दिलों में ही नहीं बल्कि हर मुल्क, हर क़ौम के दिल मे जीवित है।

इस्लाम के प्रारम्भ से पहले अरब के लोगों की जो हालत थी वह सब को मालूम है। वे एक ऐसी कौम के लोग थे जिनका मानसिक स्तर धन और और दौलत के साथ ही गिरता गया। सबा और हमीर के क़िस्से पुराने हो गये थे। खोरनक और सदीर के महल खंडहर बन चुके थे। शद्दाद का बाग़ नाम मात्र एक कहानी रह गया था। और बिलक़ीस का तख्त नष्ट हो चुका था। अरबो के तिजारती क़ाफ़ले अब भी रियाज़, यमन, और शाम के शहरो में आते जाते थे लेकिन माल और दौलत का वह वैभव नष्ट हो चुका था जो हिन्दुस्तान और अन्य पूर्वी देशों से आने वाले माल लदे जहाजों से प्राप्त होता था। अरब अब भी सखी और मेहमान नवाज़ थे, लेकिन जलन लालज भी उनमें आ गई थी। धर्म के नाम से वे निरे कोरे न थे।

अब भी हर साल वे हजारों की संख्या मे उस ख़ान–ए–काबा मे जमा होते थे जिसकी बुनियाद हज़रत इब्राहीम और उनके बेटे हजरत इस्माईल ने रखी थी। लेकिन वे इस घर के असल बड़कपन और बुजुर्गी को भूल चुके थे। उनके निकट हज की रस्म एक मेले से अधिक महत्व नही रखती थी। मक्के में जमा होना उनके निकट दौलत और रूप की नुमाइश, शेरगोई और आपस का मुकाबला था। वे अब भी बहादुर और यश्सवी थे, मगर उनकी बहादुरी में अत्याचार मिला था। इंसाफ की कमी थी । वे गैरतमन्द थे मगर उनकी गैरत का अर्थ इतना बदल गया था कि खुद अपनी बेटियों को अपने हाथों जीवित कब्र में डालने से भी परहेज़ न था। लड़ाइयों में ऊटों और बकरियों के साथ स्त्रियों को भी पकड़ ले जाना और उन्हें दासी बना लेना उनके निकट कोई गलत बात न थी। वे शराब पीने को बडक़पन का चिन्ह समझते थे । जुआ खेलने को जवांमर्दी समझते थे। तरह 2 की बुराइयाँ उनके जीवन का अंग बन चुकी थी उनके दिलो दिमाग प्राचीन कौमों की तरह सादा पत्थर जैसे नही थे जिन पर ईमान का नक्श बना दिया जाए बल्कि ऐसी किताब थे जिस पर तरह–तरह के नक्शे पहले से मौजूद थे। इन्हें छीलकर एक नई तहरीर और शकल बनाने की ज़रूरत थी और इसीलिए हमें इस्लाम के पैग़म्बर के बड़कपन और महानता का अन्दाज़ा होता है। हम उन कठिनाइयों को समझ सकते हैं जो उन्हें अरब में इस्लाम के प्रचार में झेलनी पड़ी। फिर जब हम

इस सफलता को देखते हैं जो उन्हें अपने जीवन में मिली तो हमें सचमुच कुरान और उसकी षिक्षा एक आष्चर्य जैसी लगने लगती हैं।

रसूले खुदा ने कुछ वर्षो में ही अरब की काया पलट दी। उन विभिन्न कबीलों को जो भटकते रहते थे एक संयुक्त कौम बना दिया। उन्होंने न सिर्फ उन बुतों से खान–ए–काबा को पाक और साफ कर दिया जो सदियों से वहाँ जमा थे, बल्कि अरबों के दिलों से जुल्म और बेइंसाफी के चिन्ह मिटा कर उन्हे सच्चाई के नूर से रौशन कर दिया अरब के वे बंश जिनके नाम से भी दुनिया की बहुत सी क़ौमे परिचित न थीं, इस योग्य हो गये कि कैसर और किसरा की सलतनतों को अपने घोड़ों की टापो से कुचल दें और इस्लाम का झंडा यदि एक और अटलांटिक महासागर की लहरों पर लहराता दिखाई दे तो दूसरी ओर मंगोलिया के ध्वज खडों पर भी लहराये। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या यह हृदय परिवर्तन पूर्ण था ? क्या सचमुच अरबों के दिलों से उनकी तमाम बुराइयां मिट गई थीं? क्या उनके सीने में जलन और नफरत नहीं रही? क्या वे अज्ञान की उन सब बातों को भूल गए थे जिनके आदी वे कई नस्लों से थे? ऐसा होना इन्सानी आदत के विपरीत है। यह असम्भव था कि तमाम अरब एकदम फरिष्ता बन जाते। उनमें से अब भी बहुत से लोग बाकी थे जो कुफ्र की आग सीनो में दबाये रखते थे। यह आग इस बात की प्रतीक्षा मे थी कि माफिक हवा का एक झोंका चलते ही भड़क उठे और सच्चाई के उस किले को जलाकर ख़ाक कर दे जिसकी नीव बद्र और ओहद के युद्ध के शहीदों की ख़ाक और खून से पड़ी थी। इसका एक मौक़ा रसूले खुदा की मत्यु केबाद ही मिल गया और कई अरब कबीलों ने यह कोशिश की कि इस्लाम ने जो प्रतिबन्ध उन पर लगाये थे उनसे छुटकारा पा लें और पुन; अपना पुराना जीवन और आदतें अपना ले। यह ख़राब चरित्र जो तहरीके इस्तदाद के नाम से जाना गया, इस्लाम की शिक्षा के लिए बहुत बड़ा खतरा था। परन्तु इस्लामी हुकूमत ने बड़ी मुस्तैदी से इसका सामना करके उसे जल्दी दबा दिया। मबर चूँकी रोग की जड़ न गई थी। वह धीरे 2 बढ़ता गया। ख़लीफा ततीय के शासन काल में इसने जोर पकड़ लिया। इस जमाने मे इन लोगों की ताकत बहुत बढ़ गई थी जो सचमुच रसूल–अल्ला और उनकी शिक्षा से पूरी तरह प्रभाति नही हुए थे। इनो होंठ इस्लामी कलमा से पीिचित थे मगर उनके दिल ईमान की रोशनी से कोरे थे। वे अपने को मुसलमान कहते थे मगर उन्ही सब चीजों में रूचि रखते थे जो अज्ञान के युग में उनके बाप दादा को पसन्द थी। न सिर्फ यह इनमे बहुत से ऐसे थे जिनको रसूल अल्ला के परिवार से पुराना वंशगत वैर था। इसी कारण वे इस परिवार से जलन रखते थे और उस शिक्षा के भी बैरी थे जिसने लोगों को तमाम मुसलमानों की नजरों में ऊँचा और बुजुर्ग बनाया था। इसी कारण आश्चर्य न था कि ये लोग अवसर पाते ही अपनी पुरानी नफरत का इज़हार शुरू करें और तमाम हुकूमत अपने हाथ में लेकर अपनी इच्छानुसार तरतीब देने का प्रयत्न करें ।

चौथे ख़लीफा यानी हजरत अली के काल में यह शत्रुता पूरे जोर पर थी । हजरत उस्मान का शहीद होना गोया मुसलमानों के शीराज़े का बिखर जाना था। इस घटना से खुदगर्ज़ लोगों को बहुत अच्छा अवसर मिल गया। वह हजरत अली और ऐहलेबैत के विरूद्ध लोगों की भावना को भड़काकर अपना मतलब पूरा करें। अत; शाम के हाकिम अमीर माविया ने अपना स्पष्ट विरोध शुरू कर दिया और हजरत अली के विरोध में, जिन्हें मदीनें के जन जन ने एकमत होकर मुसलमानों का ख़लीफ़ा चुना था। खुद खिलाफत के दावेदार बन बैठे। इस विरोध का नतीजा जंगे सिफ्फीन थी जो दुर्भाग्यवश फैसला न कर सकी। इस्लामी हुकूमत दो हिस्सों में बंट कर रह गई। अमीर माविया अब एक हिस्से के मालिक थे और उन्होंने अपने बल,

चातुर्य और मार्काबन्दी से विभिन्न मतों और विचारों के लोगों को अपने इर्द गिर्द जमा कर लिया। जब उन्हें विश्वास होगया कि उनका शासन मज़बूत नीव पकड़ चुका है और जब उनके बड़े समकालीन हज़रत अली की मत्यु हो गई तो उन्होंने अपने विश्वास और सिद्वांत को ताक़ पर रखकर यह कोशिश की कि ख़िलाफ़त उनके परिवार में मौरूसी (पैतक) हो जाये और योग्यता को हमेशा के लिए उससे वंचित कर दिया जाये। इस मकसद को पूरा करने के लिए उनहोंने अपने बेटे यजीद को अपना जानशीन घोषित किया और रोबदाब और लालच से बहुत से मुसलमानों को इसबात पर राज़ी कर लिया कि नामांकन इस्लाम के नियम के विरूद्व थी। इसीलिए ख़िलाफ़त को अब तक मौरूसी नहीं माना गया बल्कि यह कहा जाता था कि जो व्यक्ति सबसे अधिक उपयुक्त हो उसे ख़लीफ़ा बनाया जाय। उनके अनुसार यज़ीद में वे तमाम गुण नहीं थे जो मुसलमानों के पेशवा व हाकिम कें होना जरूरी है। जानमाल की लालच ने बहुत से मुसलमानों को विश्वास करने पर महजबूर कर दिया। गिने चुने लोग ऐसे रह गये जिनकी आत्मा यह कभी नहीं मान सकती थी कि वे ग़लत और बेजा बात से सहमत हों। यज़ीद जैसे अनुपयुक्त और फ़ासिक़ फाजिर को मुसलमानों का मज़हबी नेता मान लें? उनका दिल यह किसी प्रकार नही मान सकता था कि सच्चाई की रौश्नी को जुल्म की हवा से बुझते हुए देखें और दम न मारें इन्हीं मुछ आलोकित लोगों में हजरत इमाम हुसैन भी थे।

हज़रत इमाम हुसैन बचपन से ही रसूल अल्लाह की छांव तले पले और उनकी मत्यु के बाद अपने पिता जी की तालीम से लाभ उठाने का पूरा अवसर मिला। आप मे वे तमाम गुण इकटठे थे जो एक सच्चे मुसलमान में होने चाहिए। आप उस समय खान्दाने नबूवत में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते थे आप पर इस्लाम और मुसलमानों की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी थी। आप हर तरह अपना यह फर्ज समझते थे कि सच्चाई और इन्साफ इस्लाम की शिक्षा का बहुत बड़ा अंग है। जबरदस्ती और जूल्म के हाथो तबाह न हो जाये, सो आपने बिना किसी स्वार्थ के निडर होकर यज़ीद के नेतृत्व से इंकार कर दिया। स्पष्ट है कि यह बात अमीर माविया को नागवार गुजरी होगी, लेकिन वे समझदार और राजनीति वाले इंसान थे। उन्होंने समय को समझा कि हज़रत इमाम हुसैन को मजबूर किया जाये परन्तु उनके निधन के बाद यज़ीद तख़त पर बैठा उसने फौरन अपने लोगों को आदेश जारी किया कि जिस तरह भी हो हजरत इमाम हुसैन और अन्य लोगों को वफादारी और हुक्म मानने का हलफ उठाने पर मजबूर किया जाये। लेकिन जो गर्दन लालच और स्वार्थ के आगे न झुकी थी वह अब इन धमकियों के आगे भी नीची न हुई। हज़रत इमाम हुसैन पूर्ववत अपने इंकार पर कायम रहे। बल्कि जब आपने देखा कि आपका खामोशी से कोने में चुप बैठा रहना काफी नहीं हैं और इसका खतरा है कि कुफ्र की चिंगारी बढ़कर इतनी कवी हो जाये कि इस्लाम के अस्तित्व को खतरा पैदा हो जाये तो आपने शपथ ली कि इसके विरोध में जिहाद करेगें। जिस प्रकार भी सम्भव होगा, उसे रोकने की कोशिश करेंगे। आपके पास इस जिहाद के साधन क्या थे? एक ओर यजीद पूरी फौजी और माली शक्ति लगा सकता था जो उसके राज्य में मौजूद थीं। दूसरी ओर इमाम हुसैन उन चन्द आदमियों की वफ़ादारी पर भरोसा कर सकते थे। जिन्हें अब तक खौफ या लालच ने ईमान से बेगाना न किया था वे इस सच्चाई को जानते थे कि सत्य का युद्ध किसी एक मैदान में नही जीता जासकता और न ही हार जीत का फैसला एक मैदान पर निर्भर है। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि यह लड़ाई होती रहेगी और अन्तत; जीत सच्चाई की ही होगी। चुनानचें अपने दिल में यह विश्वास बिठाकार उन्होंने कूफे की ओर रूख किया। इस शहर में बहुत से लोग उनके पिताजी के चाहने वाले थे जिन्होंने उन्हें

मदद देने का वादा किया था। लेकिन आपके कूफ़े तक पहुँचने से पहले ही वहँ की स्थिति बिल्कुल बदल गई। जो लोग पहले लम्बे चौड़े वादे वफ़ादारी के कर चुके थे, अब शसन की शक्ति से ऐसे प्रभावित हुए कि अपने वादों को पीठ पीछै डाल कर हजरत इमाम के विरोध में भी उन्हें हिचक न रही। आपको कूफ़े वालो के इस विश्वासघात की खबर तब मिली जब आप मदीने से रवाना हो चुके थे। संभव था कि इस खबर को सुनकर किसी मामूली आदमी के इरादे में कमजोरी पैदा हो जाती, लेकिन हजरत इमाम हुसैन मामूली आदमी न थे। वह इंसानो पर भरोसा नही रखते थे और संसार की कोई शक्ति उनके इरादों को कमजोर नहीं कर सकती थी। उनका भरोसा खुदा पर था और उनका ईमान था कि खुदा ए ताला ने अपने कलाम पाक में जो फरमाया है कि खुदा अपने नूर को कामिल करके रहेगा। मुनकिरों को कैसा ही बुरा क्यों न मालूम हो,वह होकर रहेगा। सच्चाई की फतह होगी और झूठ तबाह और बरबाद होगा। आपके हिम्मत भरे कदम एक पल भी नही डगमगाये बल्कि आप उसी हौसले के साथ आगे बढ़ते गये अब आप दिल में एक बहुत बड़ा निर्णय ले चुके थे और वह यह था कि इन्साफ और सच्चाई के रास्ते में जान दे देगें ।

इस कारण कि इस बड़ी क़ुरबानी के बिना यह सम्भव न था कि मुसलमानों को उनकी गफ़लत की नींद से जगाया जाए और उनको इस ख़तरे से सावधान किया जाए अब समय सन्देश और नसीहत का नहीं था। अब खामोशी का दौर समाप्त हो गया था। अब ज़रूरत अमल की थी। आप चाहते थे कि इस्लाम या दूसरे शब्दों में सच्चाई के पौधे को अपने खून से सींच कर परवरिश दें और अत्याचार की तेज हवा में मुरझाने न दें। आपका मकसद था कि सच्चाई के लिए शहीद होने का एक ऐसा उदाहरण क़ायम करें जो इन्सानों को उस समय तक याद रहे जब तक उनके दिलों में संवेदना और आखों में ऑसू बाक़ी हैं । आप इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुऐ इसे बताने की ज़रूरत नहीं। तमाम दुनिया जानती है ।

करबला के मैदान में क्या हुआ? इन दर्दनाक घटनाओं का स्पष्टीकरण यहाँ ज़रूरी नहीं। एक आंधी थी कि जिस ने मुठठी भर धूल को बहा दिया या एक तूफ़ान था जो एक कमज़ोर किश्ती को बहाकर ले गया। दुनिया ने यही देखा कि हज़रत इमाम हुसैन और उनके मुठठी भर साथी चन्द घन्टों में एक एक करके ख़ाक और ख़ून में एड़िया रगड़ कर शहीद हो गये। दुनिया ने यह भी देखा कि ज़ालिमों के हाथों रसूल के परिवार वाले एक उजड़े हुए काफ़िले की शक्ल में शाम के गली कूचो में फिराए गए इन परिवार वालों की इज़्ज़त और बड़कपन को फरिश्ते भी मानते थे। जानने वाले यह जानते थे कि इस तमाम अत्याचार के बाद यजीद फतह का दावा नही कर सकता था बल्कि फ़तह हज़रत इमाम हुसैन और उनके बहादुर साथियों की हुई। यज़ीद का नाम हमेशा के लिए जुल्म और बेइन्साफी का प्रतीक बन गया। हज़रत इमाम हुसैन का नाम कयामत तक इन्साफ़ और सच्चाई के अलम्बरदारों में हुआ। हज़रत इमाम हुसैन की यह क़ुरबानी किसी क़ौम या धर्म के लिए नहीं थी। यह उन तमाम सिद्धान्तयों के लिए थी जिनको संसार के सत्य प्रिय लोग मानते हैं। उन्होने केवल इस्लाम को तबाही से नही बचाया बल्कि इन्साफ़ और सच्चाई को ज़िन्दा कर दिया। वह बेकसों और दुखियों के सहायक थे और उस समय अत्याचार के विरूद्ध सीना ताना जब किसी और में यह साहस न था कि उसके ख़िलाफ उंगली भी उठा सके। उन्होंने उस समय सच्चाई का स्वह ऊँचा किया जब किसी को आह करने की भी हिम्मत न थी। वह अपनी जान से गये लेकिन ईमान को जिन्दा कर गये। उनका उदाहरण हमेषा के लिए मनुष्य जाति के पथ पर मशाल का काम करता रहेगा ।

बाक़िया पेज नं0 41 पर ....

बजा ला सकता है ?

ऐसे ही ज्वलंत **उदाहरण मुस्लिम बिन अकील और हानी बिन उरवा के हैं जिन्होंने तमाम ज़िल्लतों और ज़ुल्म व सितम को सहते हुए भी सत् का पथ न छोड़ा और न इमाम हुसैन (अ०) का साथ छोड़ा।** एक दिन इब्न-ए-ज़ियाद के प्रहार से हानी बिन उरवा का मस्तक फट गया लेकिन उन्होंने मुस्लिम बिन अक़ील को इब्न-ए-ज़ियाद के हवाले नहीं किया।

यह वाक़िआत साक्षी हैं कि मर्द-ए-मोमिन मौत से नहीं डरते बल्कि उन का अक़ीदा पूरे ऊंचे स्वर से मुखर हो उठता है कि-

रहरवे राहे मोहब्बत, रह न जाना राह में।
अब तेरी हिम्मत का चर्चा, ग़ैर की महफ़िल में है।।

शहादत सब को नसीब नहीं हुवा करती। मेरे एक दोस्त थे, उन्हें हुबे वतन के जुर्म में अंग्रज़ों ने आजन्म काले पानी की सज़ा दी, जब कि उनके कई साथियों को फांसी की सज़ा दी गयी। तो वह मेरे मित्र बेसाख़्ता अदालत में कह उठेः-

मैं दार का तालिब था, तक़्दीर में ज़िन्दाँ है।
कैसे मुझे मिल जाता, जो हक़्क़े शहीदाँ हैं।।

यअ़नी मैं फांसी का तलबगार था पर तक़्दीर में लिखी थी उम्र क़ैद-फ़िर मुझे एक शहीद का हक़ कैसे मिल सकता था। उन्हें तमन्ना रही कि उन्हें भी फांसी क्यों न मिली।वही ओहदा, वही हक़-ए- शहीदां वही रूत्बा जो इमाम हुसैन (अ०) और उनके मअ़सूम बच्चों और सहकर्मी साथियों को मयस्सर हुवा। ऐसा इतिहास क्या कभी भुलाया जा सकता है ?जो दिल आज़ारी और ख़ुंरेज़ी करे वह न हिन्दू है न मुस्लिम बल्कि उस की बिरादरी रावण, कंस, यज़ीद और इब्ने ज़ियाद की है।

रावण तो ब्राह्मण था महान ऋषि पुलस्त्य का नाती था। उसके पिता विश्रवा मुनि भी भी बड़े भारी विद्वान थे। रावण भी कम विद्वान न था लेकिन उसके आमाल कैसे थे ? किस क़द्र ख़ूरेज़ी पर आमादा था कि पहले अपने भाई का हक़ छीन लिया-उसी चचेरे भाई कुबेर की थी लंका लेकिन रावण ने पशुबल आज़माकर उस भाई को भगा दिया और ख़ुद शासक बन बैठा फिर अपने बहनोई को क़त्ल कर डाला। आये दिन वह लोगों को सताने लगा, दिल आज़ारी करने लगा। ख़ून करना उसकी आदत बन गयी। राम उसे कैसे तस्लीम कर सकते थे ! वह छोटे-छोटे नाचीज़-ग़रीब तबक़े के लोगों को गले लगा सकते थे जैसा कि शबरी भीलनी, गीध, निषाद (केवट) को गले लगाया। लेकिन सत्ता और शक्ति के मद में उन्मत रावण को सिर नहीं झुका सकते थे। यही उनकी महिमा-गरिमा थी। भले उन्हें जंगल दर जंगल, पहाड़ दर पहाड़ भटकते हुए तमाम मुसीबतें झेलनी पड़ी। यही दृढ़ता इमाम हुसैन (अ०) और उनके साथियों में चरितार्थ मिलती है। वह ख़ुद को मिटा गये। अपना पूरा कुन्बा न्योछावर कर दिया। लेकिन सच्चाई और नेकी की राह रूद्ध नहीं होने दी। कितने ही यज़ीद और इब्न-ए-ज़ियाद आये और चले गये। उनके नाम मिट गये। लेकिन वह पुर नूर रास्ता आज भी रोशन है। सत्य का चिराग़ अखण्ड जल रहा है क्योंकि-

"वह शम्अ़ क्या बुझे जिसे रौशन ख़ुदा करे।"

पेज नं0 38 का बाक़िया..........

यह वह करबला की घटना है जिसे मुसलमान हर देष में मुहर्रम के अवसर पर याद करके आंसुओं की भेंट अर्पित करता है। तेरह सौ बरस बाद भी मुसलमानों के दिलों मे इस घटना की याद वैसी ही मौजूद है। कोई मुसलमान ऐसा नही कि जिसके दिल में इस घटना कि याद से एक ओर दुख और दूसरी ओर हौसला न पैदा होता हो परन्तु जैसा कि मैने अभी कहा इस घटना का महत्व सिर्फ मुसलमानों के लिए ही नहीं हैं बल्कि तमाम संसार के इन्सानों के लिए है। इस कारण यह आवश्यक था कि इस कुरबानी के महत्व का एहसास हर धर्म के लोगों में पैदा किया जाये यह बात धन्य है कि अन्जुमने यादगारे हुसैनी के प्रयत्न से आज यह सम्भव हुआ कि मुसलमानों के साथ हिन्दू, ईसाई और दूसरे धर्मो के लोग भी मिल कर इमाम हुसैन की शान में वह श्रद्धान्जली पेश कर रहे हैं जिसके वह हर तरह से हकदार हैं। खुदा करे यह श्रद्धान्जली जीवन के हर क्षण में एकता बनाये रखे और आपस के उस भेद भाव को मिटा दे जिसके कारण हिन्दुस्तान अब तक दुनिया की कौमों में वह स्थान प्राप्त नही कर सका जिस का वह हर तरह हक़दार है।